चाँद की पेशानी पर इक दाग है...

1 . वक्त की नब्ज

तुम्हारे आगरे में बर्फ पड़ती है?

नहीं, मेरे आगरे में ऐसा कुछ भी नहीं होता है।

अच्छा क्या तुम्हारे दिल्ली में समंदर है?

नहीं, मेरी दिल्ली में दहशत है, हवस है, मुहब्बत है।

फोन की घंटी ने उसे कच्ची नींद से उठा दिया।

हेलो, कौन?

सलाम बाजिया।

सलाम, इतनी रात गए फोन, सब खैरियत है?

हूँ... सब खैरियत है। अब्बू चाहते है तुम किसी को भेज रकाबगंज वाली जमीन का पैसा मँगवा लो।

बेच दी क्या?

नहीं, पर जल्दी ही बेच देंगे, शायद अगले हफ्ते तक आ जाए पैसा।

किसी और के हाथों क्यूँ?

बाजिया, बकौल अब्बू इस घर में शराब, सनसनीखेज बातें, और हंगामाखेज औरतों के आने पर पाबंदी है।

तुम शराब भी पीती हो, सनसनी में रहती हो और हंगामाखेज भी हो।

दिल्ली में रहना कोई सनसनी वाली बात तो नहीं।

ये तो तुम्हीं जानो।

ठीक है, रखते हैं फोन। पैसा मँगवा लेंगे हम खुद।

खुदा हाफिज

तुम बहुत हंगामाखेज हो निकहत, बड़ा ब्लंट और ऍजी एटीट्यूड है तुम्हारा।

कौन है जो रात-रात भर उसके कानों में गूँजता रहता है? अब सारी रात नींद नहीं आएगी उसे। अकेली रातें बड़ी लंबी होती हैं। काटे नहीं कटतीं। ऐसा लगता है ये तन्हाई एक साहिल है दूर तक फैला हुआ, अंतहीन, बेहद लंबा और विराट और रात के परों पर बैठा ये साहिल वक्त की नब्ज गिनता रहता है। टिक-टॉक, टिक-टॉक, बिना रुके लगातार सुनता रहता है। कभी-कभी सिर्फ किसी एक में ये नब्ज डूब जाती है और बस साँसें चलती रहती हैं।

बचपन से जवानी तक कितने ही दिन आगरा में बीते उसे ठीक से याद नहीं और वो अब कुछ याद करना भी नहीं चाहती है, वो जानती है कि अतीत की बाँहों का सिरहाना अक्सर सोने वालों के नीचे से सरक जाता है... अकेले रह जाते हैं उदास पंछी, चाँद का चराग, शाम के सपाट कंधे और रेगिस्तान की गोल कलाइयों पर उभरे नख्लिस्तान... प्यासे लोग अक्सर भटक जाते हैं। ये समंदर की नीली आँखें, पेड़ों की सब्ज रगें, जमी की मटमैली पीठ पर खिले अतीत के तमाम गम लंबी अँधेरी रातों में महका करते है। और ये अतीत जब-तब पास आकर उसे सीलन से भर जाता है।

कितनी लंबी रातें हैं। काली, घनी, और कफन बराबर लंबी। एक बार ऊपर ओढ़ लो तो खत्म ही न हों। उसने घड़ी देखी रात के दो बज गए थे। वो खिड़की से हटी और पलंग पर जा कर लेट गई।

प्यासे लोग अक्सर भटक जाते हैं, पर वो तो प्यासी नहीं थी। जिंदगी ओक लगा कर पी थी उसने पर शायद साथ में पारा भी पी लिया था। सब नसें कट गई गले की और जिंदगी उनमें से बह निकली। बिन प्यास के अब दर-दर भटक रही है वो। भटकना उसका मनपसंद खेल था। एडवेंचर उसकी नस-नस में था। जिंदगी को एडवेंचर बनाना चाहती थी वो, एक यही आरजू थी उसकी। पर आरजू बड़ी कमीनी चीज है। सब को पता है कि ये आरजू क्या शै है। जड़ें खोद डालती है आदमी की। सब जानते हैं कि ये चाँद-सूरज वक्त की दरारों से निकले हैं... गंगा भी हिमालय की किसी दरार से फूटी थी... ये सर्दियाँ रोहताँग के दर्रे से उठती हैं... सुना है पठान कभी दर्रा-ए-खैबर से निकले थे... पर कोई नहीं जनता ये आरजू, हसरत,चाह दिल की किस दरार से निकलती है, किस दर्रे से फूटती है और किस कोने से उठ कर आसमान तक फैल जाती है। अब उसकी उम्र यही सुराग ढूँढ़ने में जाया हो रही है।

2. ऐ मेरे माजी

शाम के सलेटी-भूरे रंग ने रात की पगडंडी पकड़ कर खिड़की पर दस्तक देनी शुरू कर दी। इसी पगडंडी पर उतरता दिन और चढ़ती शाम एक जगह ठीक दस मिनट के लिए

बतियाते हैं। वो रोज देखती है यह दृश्य, फिर दिन पश्चिम को विदा ले लेता है और शाम उसके घर की तरफ। उसने सोचा अगर बड़ी अम्मी सुबह-शाम को सर जोड़े यूँ बातें करते देखती तो क्या कहती? वही जो बचपन में उनसे कहा करती थी।

"ऐ सर निहुड़ाए मत बतियाओ जूँ चढ़ जाएगी मौड़ियों"

आज अगर बड़ी अम्मी होतीं तो वो उन्हें समझाती कि बी-अम्मी जब सुबह-शाम सर निहुड़ाए मिलते हैं तो बस उदासियाँ चढ़ती हैं कुछ और नहीं। उदासियों के मजमून बड़े रेशमी होते हैं उसने सोचा। ये उदासियाँ माजी के पहलू में ले जाती हैं बिठाने को। यमुना की मैली-मैली लहरें, नालबंद की पतली सँकरी गलियाँ, फुव्वारे का रंगीन बाजार, कैंट की खामोश सड़कें, ताजमहल की चाँदनी रातें, मस्जिद के सहन में उठती अजान, चची के हाथों की खमीरी रोटी और कोरमा, अम्मी की किशमिश वाली खीर, अब्बा का धुँधला चेहरा, चचा की भरी आवाज, आँगन में लगी मेहँदी और हरसिंगार कितना कुछ याद आ गया उसे और किसी की बिना तीन उँगलियों की हथेली और एक गुलाब का फूल भी बेसाख्ता याद आ गया। अचानक उसके हाथ पीठ की तरफ घूम गए फिर याद आया कि अब ना वो हथेली रही न वो फूल, पर बहुत सालों पहले उसने उस जगह गुलाब का एक टैटू बनवा लिया था। ये उसके छोटे-छोटे एडजस्टमेंट्स थे अतीत के साथ जीने के। अतीत का अलाव हर पल उसके अंदर जलता रहता था, दिल्ली की रंगीनियाँ और रौनकें भी इसे बुझा नहीं पाते। यादों के पंछी उड़ते-उड़ते जब तब चाहें उसके कंधों पर आ कर बैठ जाते हैं। माजी के ये परिंदे दोजानू बैठ कर वक्त के इस लम्हे को चोंच से छीलते हैं... कहीं शायद कुछ निकल आए। यूँ भी बदन छीलना बहुत मुश्किल है और बदन छील के कैसे आजादी मिलेगी रूह को? वो तो वैसे ही धुआँ है बहुत पहले से। यह धुआँ किसी के बस में नहीं। अतीत छीलता है गर आज को तो कल की नंगी पीठ पर चोटों के आड़े-टेड़े निशाँ पाए जाएँगे। जूनून हो या सुकून सब रूह की आजादियों के कौल-करार हैं। माजी के परिंदे हमेशा दोजानू ही बैठे रहते है और हर पल उसे आते-जाते चोंच मारते हैं।

खुशगवारियाँ भी बहुत पैनी चीज होती है मन की नसें तक काट देती है। उसकी तीन उँगलियाँ एक हादसे में जाती रही थी। वो सिर्फ अपने अँगूठे और एक बची उँगली से हर शाम उसकी पीठ पर एक गुलाब बना दिया करता था। विदा की बेला में मिलने की उस सुनसान जगह से घर तक निकहत अपनी पीठ को साड़ी के पल्ले से ढक कर चलती थी कि कहीं कोई उस फूल का भेद न पा ले। सारी रात वो बेरंग गुलाब उसे महकाए रखता था, नींद में भी। वो उससे सच्ची मुहब्बत करती थी और वो उसे अधूरे हाथ से एक उम्दा आर्ट पीस बनाने का कैनवास भर समझता था।

मैं एक दिन बहुत बड़ा पेंटर बनूँगा। देखना सारी दुनिया मेरी बनाई पेंटिंग्स खरीद-खरीद के अपने ड्राइंग-रूम्स में सजाएगी। देखना मेरे साइन देखते ही लोग तुरंत पेंटिंग्स खरीद लिया करेंगे। वो बिना रुके बोलते जा रहा था तूर की तरह ऊँचाइयों को बढ़ता हुआ। उसके पैरों के नीचे चाँद था। आसमान उसकी उड़ानों में समाता नहीं था छोटा पड़ जाता था। वो अपने वास्ते खुदा बन गया था और वो जानती थी कि ये खुदाई उन्हें डूबा देगी। पर वफादारियों ने उस वक्त उसके होंठ सिल दिए थे।

तुमने मुझे आज तक नहीं बताया।

क्या?

कि शीरी क्या है? तुम्हारा सरनेम?

नहीं बुद्धू, शीरी मेरी अम्मी का नाम है। अब्बा को बहुत पसंद था इसलिए मेरे नाम के साथ जोड़ दिया ऐज ए मिडिल नेम। सो पूरा नाम हुआ निकहत शीरी खान। खान में लगाती नहीं, निकहत शीरी छोटा भी है और क्लासी भी।

ओह! आओ चलो तुम्हें घर छोड़ दूँ।

अच्छा सुनो, वो चलते-चलते हठात रुक गई। मन की उधेड़-बुन आँखों में साफ झलक आई।

क्या हुआ?

तुम न्यू आगरा में किसी डॉक्टर को जानते हो ना, तुमने एक बार कहा था।

क्यों क्या हुआ?

तुम्हारी खानाबदोशी, तुम्हारा हर्फ मेरे अंदर जगह बना रहा है, पनप रहा है। शादी कर लो पुनीत।

फक, चेहरा सफेद पड़ गया उसका। वो समझ गई अब सदा के लिए विदा लेनी होगी। एक मुसव्विर, चित्रकार, पेंटर के सब रंग भय की सफेदी में डूब गए।

शादी कैसे कर सकता हूँ निक्कू? मैं हिंदू हूँ और तुम...। तुम कुछ ले लो मैं बंदोबस्त कर दूँगा।

बंदोबस्त... क्या बंदोबस्त करोगे।

पैसे का...।

मेरे जिस्म की चौहद्दियों में भटके थे क्या उस भटकाव का पैसा दे पाओगे? याद है तुमने अपने दाँतों से मेरे पैर का अँगूठा काटा था क्या उस लुत्फ का पैसा दे पाओगे? जाओ तुम आजाद हो पुनीत। निस्बतों से आजाद हो, वफादारियों से आजाद हो।

आगे कड़े निर्वासन के दिन आने थे। उसे पता था की अब ये खानाबदोशी उम्र भर की है। वो जानती थी कि यहाँ से आगे जिंदगी अब सिंगल लेन है। कहीं से वापसी को कोई यू-टर्न नहीं होगा। आगे की सड़क का कोई हिस्सा अब यहाँ नहीं खुलेगा। दिन के मासूम उजले चेहरों को रातों के भारी लबादे पहनने होंगे। जो भी हो अब कोई वापसी नहीं, अंदर धूप पालनी है, उसने खुद से कहा।

देह में धूप पलती है निक्कू अब्बा उससे कहा करते थे।

सब झूठ है, कौन कहता है कि देह के अंदर धूप पलती है, खिलती है, फैलती है? जो भी कहता है झूठ कहता है। धूप आसमानों के नसीब में है। वहीं खिलती है, फैलती है। देह के अंदर अँधेरा पनपता है। ऊपर को उठता हुआ, छाता हुआ। अंदर गहरे में कहीं... शिराओं में बर्फ बहती है जो खून को जमा देती है। देह में दरारें पलती हैं धूप नहीं... गर अंदर धूप होती तो मौत सी ठंडक कैसे जिंदा रह पाती। ये धूप उजाला सब झूठ है।

बाहर अँधेरा घना हो कर फैलने लगा था। और कमरे के कोने में बैठी रात एक जंग लगे खड़ग से समय की फाँकें काट रही थी।

उसने एक डायरी खोली और लिखना शुरू कर दिया...

"ऐ गुजश्ता जिंदगी

मेरे अतीत

मेरे माजी

तुमसे नजदीकी का राब्ता है मेरा

तुम्हें लम्हा-लम्हा जिया है

तुम्हें वरक-वरक पढ़ा है मैंने

यूँ तो कुछ खास भी नहीं था तुममें

कि तुमसे मुहब्बत करूँ मैं

पर मेरा हाल तन्हाइयों की पनाहगाह है

और कल की आकबत का कोई ठिकाना नहीं

मुझे बस इसीलिए प्यार है तुमसे

ऐ मेरे माजी"

3. दरिया ये बड़े मचलते हैं

अब आगे जीवन की राह बड़ी कठिन है उसने सोचा और अबके वक्त का पाँव भी भारी है और इस दौर में सबसे ज्यादा पैदाईश गमों की होगी। जिन्हें उसे चुपचाप समेटना होगा...

जिंदगी के लंबे बाइस साल उसने दिल्ली की गुमनामी में गुजार दिए और बखूबी गुजार दिए। जैसे मौत के कुएँ का सवार दम साधे अपना सफर पूरा करता है ठीक वैसे ही इतना लंबा वक्त बिता दिया उसने... कभी जरा लड़खड़ाई तो फौरन सँभल गई। चौबीस साल की खूबसूरत लड़की से ले कर छियालीस साल की औरत तक का किरदार तन्हाइयों के सहारे चुपचाप निभा दिया और पाया सिर्फ एक घर और बच्चों के एक एन.जी.ओ. में नौकरी।

खुदा को वो मानती ही नहीं थी। उसके हिसाब से खुदा इंतिहाई तौर पर एक मसखरा है, अगर न होता तो उसकी नौकरी बच्चों की खातिर-तवज्जो में न लगता। जबकि वो जानता था की एक ऐसे ही अनजाने-अजन्मे को वो कब का यमुना की लहरों में फेंक आई थी। कभी-कभी जब उसे सब याद आता तो उसका सुकून उजाड़ जाता था। ऐसा लगता जैसे मुँह में मिट्टी भर गई हो। चाँद किरचों-किरचों में बिखर जाता। कब्रें सी दिखती उसे हर ओर और वो चौंक जाती। हँसते-रोते चेहरे, सुबह-शाम के चाँद-सूरज सब मिट्टी की कब्र में डूबने हैं एक दिन। मिट्टी में बड़ा फैलाव है, मिट्टी से बड़ी पनाह कोई और नहीं... जितनी भी पनाहगाहें ये दुनिया उजाड़ती है उनके सब खानाखराब मिट्टी में ही पनाह पाते हैं...।

ये ख्याल झटक के वो चाँद देखने लगी... तीसरी शब का चाँद बड़ी मुश्किल से लोटे में से निकल कर आया था और उसकी खिड़की पर टँगा था। वो उसे जी भर के देख भी नहीं पाई थी कि फोन बज पड़ा।

हेलो!

हम त्रिवेणी बोल रहे हैं।

बोलो यार इतने दिनों बाद कैसे याद कर लिया?

सुनो ताज में एक प्रदर्शनी है सत्ताईस को सोचा तुम्हारे बच्चों को घुमवा दें वहाँ, क्लासिक पेंटिंग्स हैं देख लेंगे।

अमा छोड़ो यार, हमारे बच्चे कहाँ इस लायक कि कला-प्रदर्शनी देखें। आई.टी.ओ. घूम लें, जनपथ घूम लें, छोले-भठूरे खालें इतना ही स्टैंडर्ड है इनका, ताज-वाज लायक कहाँ। हमें बुलाओ तो हम आ जाएँ।

तुम्हारा आना तो निश्चित ही है।

किसकी एग्जिबीशन है?

है एक थाईलैंड बेस पेंटर।

क्या होगा उसकी पेंटिंग्स में। पद्मासन में बैठे हुए या आधी नींद में लेटे हुए बुद्ध, दो-चार हाथी, एक नहर या ब्रह्मा की कोई मूर्ति यही होता है इन थाई-चीनियों की पेंटिंग्स में... छोड़ मैं नहीं आ रही।

अरे आना तो, मैंने देखी हैं इसकी एग्जिबीशन पहले बड़ी क्लासी होती हैं। है तो इंडियन आखिरकार।

इंडियन?

हाँ तुम्हारे अलीगढ का ही है।

तुम्हारा बस चले तो सारा यू.पी. ही मेरा बना दो। मैं आगरा से हूँ अलीगढ़ से नहीं। अच्छा है कौन ये पेंटर?

है एक पुनीत वार्ष्णेय, कई सालों से थाईलैंड में है। नेचुरल लैंडस्केप्स और एशियन कम्युनिटीज बेस पेंटिंग्स बनाता है। पिछले पाँच-छ सालों से लाइम लाइट में है।

हेलो... हेलो चुप क्यों हो गई भई? तुम हो लाइन पर निकहत।

चौक-चौक जगमगाहट, उजाले, बल्ब, पेट्रोमेक्स की रोशनी में नहाई हुई गलियाँ। घर-घर से उठते बैन, सिसकियाँ। गोल घेरों में बैठी औरतें घंटों रोती रहती थी। बी-अम्मी को घेर कर बैठी अम्मी और चची हुसैन का बैन किया करती थी। हाय ! हुसैन, हाय ! हुसैन। तुम क्यूँ गए? तुम कहाँ गए?

हाय मेरे प्यारे प्यासे मर गए नदिया किनारे।

हाय में दो बूँद पानी भी न दे सकी।

हाय मेरे प्यारे छोड़ गए मुझ को।

किसका बैन करती थी अम्मी? घर छोड़ कर भागे हुए अब्बू का !

वो घबरा कर उठ बैठी। सामने मेट्रो की लाइन पर काम चल रहा था, वैल्डिंग मशीन से निकलती चिनगारियाँ ऐसे उठती थी मानो दूर से ही उसके अंदर उतर जाएगी। उसने उठ कर पानी पिया। सामने पूरनमासी का चाँद धुँधला सा चमक रहा था। एक ओस जैसी पर्त सब जगह पड़ी हुई थी। कितनी अजब बात है उसने सोचा कि जिंदगी का कही कोई शॉर्टकट नहीं... लंबे चौबीस घंटों में बंटा दिन लाख कोशिशों के बाद भी तेइस का नहीं हो सकता। कही ऐसा कोई पुल नहीं है जिसकी शुरुआत पर चढ़ो तो बिना कही रुके सीधे आखिरी पार उतरा जा सके। ये जिंदगी का बीहड़ कही खत्म नहीं होता। ये जिंदगी कभी गोल, कभी चौसर, तो कभी कुंडली लगाए ऐसे साँप की तरह दीखती है कि जिस की इब्तिदा तो मिलती है पर इंतिहा का कोई छोर नहीं मिलता। इतनी लंबी क्यूँ होती है जिंदगी? कि सामने-सामने ये तो दीखता जाएँ कि इसका एक हिस्सा दीमकों की चपेट में आने लगा है और हाथ बढ़ा कर इसे दामन से न झटका जा सके...

उफ ! क्यूँ होती है जिंदगी इतनी लंबी?

दिन निकलने को था पर आसमान अब भी गहरा ही था। उसने आँखें गड़ा के देखा तो ऐसा लगा कि आसमान पर कोई धनुर्धर सदियों पहले अपने तीर-कमान उतार के कहीं चला गया था और अब तक नहीं लौटा है। कौन था ये? किसका तीर-कमान आसमान पर टाँगें-टाँगें दीमकों की चपेट में आने लगा है... उधर चाँद भी झड़-झड़ कर बिखर रहा था। भैरवी के खुले बालों सी रात जिसमें सैकड़ों सितारे जुगनुओं की मानिंद जगमगाते रहते थे उस रात की लटों में अब धूल भरी पड़ी है। आवारा सड़कों सी आकाशगंगाएँ गोल-गोल चक्कर खा रही हैं। कौन कर्ण है ये, जिसका काल पृष्ठ दीमकों की जद में आन पड़ा है? कोई बताएगा?

कोई नहीं है यहाँ कुछ बताने वाला। किसी सवाल का जवाब नहीं मिलता यहाँ। फिर भी हाथों की लकीरों में ढेरों सवाल छुपे पड़े हैं। और उसका आज का ताजा सवाल था पुनीत से सामना। यहाँ क्यूँ भागे हुए, भूले हुए लोगों से दुबारा मुठभेड़ की संभावना बन जाती है?

ये गुमनामी, भटकाव, बेचैनी, झक्की मिजाज खुदाई वसीहत है तुमको और वसीहत में मिली दौलत ठुकराई नहीं जाती निकहत, उसने सोचा। जब चाँद उजाले के पर्दों में सरक के खो गया तो उसने भी खिड़की का पर्दा गिरा दिया और सोने चली गई। पर हमिंग बर्ड की तरह बार-बार, लगातार ये ख्याल उसके जहन में शोर मच रहा था।

"हथेलियों से कोई हटा दे ये लकीरें, दरिया ये बड़े मचलते हैं"

4. चाँद की पेशानी पर एक दाग है

बुद्ध की एक आदमकद पेंटिंग की तरफ वो बड़े गौर से देख रही थी कि त्रिवेणी ने कंधे पर हाथ रख झकझोर दिया।

घंटे भर से देख रही हो इस पोट्रेट को ऐसा क्या दीख गया इसमें?

हम्म्म, देख रही थी कि कितनी डेस्पेरेट हैं बुद्ध की आँखें इस तस्वीर में, इसी में क्यूँ बल्कि और भी जितनी तस्वीरें हैं सभी में अजीब सा एक्सप्रेशन है आँखों का। ऐसा लगता है जैसे मोनालिसा की पेंटिंग से इंस्पायर हो कर बनी हों ये सब पेंटिंग्स।

श्श... पीछे ही खड़े हैं पुनीत जी सुन लिया तो क्या फील करेंगे? त्रिवेणी ने कहा।

अरे भाई त्रिवेणी जी इंट्रोडक्शन तो कराइए। पीछे से एक आवाज आई।

वो पीछे पलटी तो ऐसा लगा जैसे परों वाले घोड़े जुलजनाह पे बैठ कर एक पल को अतीत लौट आया हो। पर अतीत आया भी तो जुलजनाह पे बैठ कर और उसकी आँखों में शशोपंज छोड़ कर पल भर में गुम भी हो गया। अब जो सामने खड़ा था वो जवानी के कंगूरे से उतरती बेल का पत्ता था। हाँ आज भी वो वैसा ही था जैसा की बाइस बरस पहले था। पर वो कुछ था और कुछ भी नहीं था। निकहत ने माथे पर आया पसीना पोंछा।

हाँ-हाँ मैं तो आप-दोनों को मिलवाना ही भूल गई।

क्या तआरुफ करा रही हो, हम बहुत सालों से जानते हैं एक-दूसरे को। कॉलेज के दिनों में साथ ही पढ़ते थे हम। निकहत ने कहा।

अरे! वाह, पर तुमने बताया तो नहीं उस दिन मुझे फोन पर।

वो इतने दिनों बाद जिक्र आया तो पहचान नहीं पाई थी।

वो बड़े गौर से उसे देख रहा था। फिर एकाएक बोल पड़ा। तुम बिलकुल नहीं बदली... आज भी वैसी ही हो।

बदले में वो एक फीकी सी हँसी हँस दी।

भीड़-भाड़ और शोर-शराबे में डूबे रेस्टोरेंट्स और पब्स में घूमते फिरते कब एक महीना बीत गया दोनों को पता ही नहीं चला।

तुमने शादी क्यों नहीं की निक्कू?

बस ऐसे ही।

आर यू अफ्रेड ऑफ यॉर पास्ट?

अतीत से क्या डरना, वो तो कब का बीत गया। वो बोली। तुम्हारी शादी कैसी चल रही है?

अच्छी चल रही है, फर्स्ट क्लास। अच्छा आज रात क्या कर रही हो?

कुछ नहीं।

तो फिर मेरे होटल आ जाओ। कुछ वक्त और साथ गुजार लेंगे।

शटअप! आई डोंट सेल माय बॉडी। प्रेमी के साथ सोने और अनजान आदमी के साथ सोने में बहुत फर्क होता है।

नहीं-नहीं मेरा वह मतलब नहीं था। वो सकपका के बोल।

अच्छा मैं चलूँ अब।

प्लीज थोड़ा और रुको। एक-एक कप कॉफी और हो जाए। वो मैं एक नई पेंटिंग बना रहा हूँ, सोच रहा था की उसकी सबसे पहली झलक तुम्हें दिखता।

पर तुम्हारी आँखों की दावत अलग थी पुनीत।

तो क्या सारा जीवन सन्नाटों में काट दोगी?

जानते हो हवाओं का संबंध सन्नाटों के साथ सबसे गहरा होता है। चिंता मत करो मेरे सन्नाटे भी सीटियाँ बजाते हैं वो हँस के बोली।

मतलब?

मतलब ये कि मैं अपनी नसों में भटकाव लिए पैदा हुई हूँ। ये भटकाव किसी मजबूर लड़की का नहीं है जो जिंदगी के मनचाहे इंतिखाब के लिए कोई आग का दरिया पार करे और सदियों तक नंगी सड़कों पर शाहबलूत के पत्ते सी दर-ब-दर उड़ती फिरे। न ये ऐसी लड़की का है जो अपनी भटकती जिंदगी में किसी ऐसे मखमल की तलाश में है जिससे सवालों और जवाबों की वजह से अपनी आइडेंटिटी पर पड़े शिगाफ को ढक सके। मैं निकहत शीरीं ये खानाबदोशी खून में ले कर पैदा हुई हूँ। बकौल अम्मी मैंने पाँचवे महीने में ही लातें मारना शुरू कर दिया था। ये भटकने के लिए ये मेरी पहली छटपटाहट थी... ये भटकाव मैंने जानबूझ कर चुना है। मैं वो नहीं जो महफूज सायबानों के लुट जाने के बाद अपनी नंगी आबरू बचाने के लिए घने दरख्तों को ढूँढ़ती फिरे... मैं यूँ ही चल पड़ती हूँ। जो जमाने ने दिया वैसा ही लौटा देती हूँ। मैं ऐसे खुदा की तलाश में हूँ जिसे मेरे किसी के साथ सोने या वन नाइट स्टैंड पर कोई ऐतराज ना हो। कही ऐसा कोई खुदा मिलता ही नहीं, इसलिए मैं खुदा को मानती नहीं पुनीत।

अच्छा अब चलूँ। एक के बजाय दो बार कॉफी पी ली। इस रेस्टोरेंट का बिल बहुत ज्यादा आता है अगर थोड़ी देर और बैठे तो तुम्हारा सारा पर्स यही खाली हो जाएगा

चलो मैं छोड़ देता हूँ।

नहीं मेट्रो से चली जाऊँगी, जल्दी पहुँच जाऊँगी।

लगता है तुम मुझे अपना घर नहीं दिखाना चाहती।

चलो यूँ ही सही।

मैं रात को इंतजार करूँगा। मैं कल आगरा जा रहा हूँ।

वो बिना जवाब दिए बाहर निकल गई।

मैं कल आगरा जा रहा हूँ। बार-बार यही गूँज रहा था उसके कानों में।

आगरा, आगरा, आगरा... कानों की लवों पर रखा है शहर और वो हाथ बढ़ा कर छू नहीं सकती, निगाह उठा कर देख नहीं सकती।

कुछ नामों में बड़ी जानलेवा ताकत होती है। सबसे खतरनाक मिसाइलों की ताकत भी छोटी पढ़ जाएँ इनके सामने। घरों से छूटे बाशिंदे उम्र भर शहरों के नामों की मार सहते रहते हैं। किसी के लिए आगरा नसें काट देता है तो कोई मुल्तान का जिक्र सुन टूट जाता होगा। किसी की छाती पर क्योटा भी घूँसे मारता होगा। उसने आँखें मूँद ली। दिल वापस उन्हीं तंग गलियों में, मेहँदी की झाड़ियों में, आँगन और बाजारों में पहुँच गया था।

जब आँख खुली तो अँधेरा घिरने लगा था। वो उठी, तैयार हुई। जनपथ की फिजूल सी चकफेरियाँ काट जब उसने घड़ी देखी तो आठ बज रहे थे। उसने हाथ के इशारे से एक ऑटो वाले को बुलाया।

ताज होटल चलोगे?

ऑटो वाले ने सजी-धजी निकहत को देखा और मुस्कुरा कर बोल, जी चलेंगे।

वो हजारों बार यहाँ आई थी पर हल्की पीली रोशनी में नहाया होटल आज उसे पहली बार अजीब सा लगा। रात की रानी की खुशबू उसका दम घोंटने लगी।

सुनो भैया वापस चलेंगे, उसने मुड़ कर ऑटो वाले से कहा।

जनपथ?

नहीं, कैलाश कॉलोनी।

एक बड़े कैनवास पर गहरे नीले रंग के आसमान पर एक हल्के आसमानी रंग का चाँद पूरी आबो-ताब से ऐसे चमक रहा था, मानो जैसे पेंटर ने ब्रश के सहारे सच में चौदहवीं का चाँद कागज पर उतार के रख दिया हो। साढ़े दस बज गए थे और वो अभी तक उसका इंतजार कर रहा था और वो अब तक नहीं आई थी। वो थक कर आराम कुर्सी पर बैठ गया और कब इंतजार में बैठे-बैठे आँख लग गई उसे पता ही नहीं चला।

आधी रात के दो बजे घड़ी के अलार्म से उसकी नींद टूटी। चौंक कर इधर-उधर देखा तो पाया कि वो कमरे में अकेला था। एकाएक उसकी नजर कैनवास पर पड़ी। पता नहीं

कब कैसे एक लाल रंग की डिब्बी फर्श पर गिर पड़ी थी। उचट कर छींटे यहाँ-वहाँ जा बिखरे। एक पतली लाल रंग की छोटी सी लकीर चाँद पर खिंची पड़ी थी। रंग था, कब का सूख गया था पर इस लकीर ने चित्र के मायने ही बदल दिए थे। अब देखने पर ऐसा लगता था कि जैसे चाँद की पेशानी पर इक दाग है।

अब इंतजार और आस दोनों खत्म हो गए थे।

उसने बत्ती बुझाई और पलंग पर जा कर सो गया।

https://www.hindiadda.com/chaand-kee-peshaanee-par-ik-daag-hai/